पापजन्य रोगोंका दिग्दर्शन और उनके शमनके शास्त्रीय उपाय

किसी के गत जन्ममें अधिक पाप हो जानेसे नारकीय दुःख - भोगके पीछे भी मनुष्ययोनिमें उसका दुःखदायी फल रोगके रुपमें भोगना पड़ता है, परंतु जो मनुष्य पाप नहीं करते, बल्कि पथ्य - भोजन, इन्द्रियरक्षण, सदाचार - पालन, गो - द्विज - देवादिकी भक्ति और स्वधर्ममें निरत रहते है, वे चाहे किसी भी वर्ण, आश्रम या अवस्थके हों, उन्हें रोग नहीं होते; वे सदैव नीरोग रहते हैं। वास्तवमें रोगकें मूल कारण पाप हैं और पापोंका प्रायश्चित करनेसे पाप और रोग दोनों क्षीण हो जाते हैं। प्रायश्चित्तमें स्त्रान, दान, व्रत, उपवास, जप, हवन और उपासना आदि मुख्य हैं। किसमें क्या करना चाहिये यह पापानुकूल प्रत्येक व्रतमें बतलाया गया है। ' पाप ' - उपपातक, महापातक और

अतिपातकरुपसे तीन प्रकारके होते हैं । विशेषता यह है कि ' उपातक ' से यकृत प्लीहा, शूल, श्वास, छर्दि, अजीर्ण और विसर्प आदि रोग होते हैं । ' महापातक ' से कोढ़, अर्बुद, संग्रहणी और राजयक्ष्मा आदि होते हैं और ' अतिपातक ' से जलंधर, भगंदर, नासूर, कृमिपरिवार और जलोदरादि होते हैं । देहधारियोंके शरीरमें वात, पित्त और कफ - ये तीन ' महादोष ' हैं । ये जबतक समान रहें तबतक कोई उपद्रव नहीं होता, इनमें विषमता आनेसे दुःखदायी रोग हो जाते हैं ।

रोगास्तु दोषवैशम्यं दोषसाम्यरोग्यता ।

रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते ॥ (वाग्भट्ट)

वे चाहे सह्य हों या असह्य, उनसे प्राणिमात्रको क्लेश होता ही है । आयुर्वेदमें **स्वाभाविक, आगन्तुक, कायकान्तर और कर्मदोषज** - ये चार प्रकारके रोग बतलाये हैं ।

स्वाभाविकागन्तुककायकान्तरा

रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ॥ (शार्ङ्गधरसंहिता)

इनमें भूख - प्यास, निद्रा, बुढ़ापा और मृत्यु - ये **'स्वाभाविक '** हैं । काम - क्रोध, लोभ - मोह, भय, लज्जा, अभिमान, ईर्ष्या, दीनता, शोक, अपस्मार, पागलपन, भ्रम, तम, मूर्छा, संन्यास और भूतावेश आदि **'आगन्तुक'** हैं । पाण्डुरोग, अन्त्नवृद्धि, जलोदर और प्लीहा आदि **'कायकान्तर'** हैं और पूर्वजन्ममें किया हुए पापजन्य सभी रोग **'कर्मदोषज'** हैं । अथवा जो रोग दीखनेमें सरल - साध्य किंतु बड़े - बड़े उपायोंसे भी छूटें नहीं - बढ़ते ही रहें या बहुत भयंकर अथवा असाध्य होकर भी साधारण - से उपायसे ही शान्त हो जायँ, वे **'कर्मदोषज'** होते हैं -

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः ।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयो कर्मजो बुधैः ॥ (भाव)

वास्तवमें पूर्वजन्मके पापोंकी जबतक निवृत्ति नहीं होती, तबतक कर्मदोषज कोई भी रोग उपाय करनेपर भी घटते नहीं, बढ़ते ही हैं और जब सदनुष्ठान आदिके द्वारा पापोंकी

निवृत्ति हो जाती हैं, तब वे बढ़ते नहीं, घटते हैं । अतएव पापोंकी निवृत्तिके निमित्तसे ' पापसम्भूत ' सर्वरोगार्तिहर व्रत अवश्य ही आरोग्यप्रद और श्रेयस्कर हैं ।

पापमूलक रोगोंमें सर्वप्रथम ज्वरकी गणना की जाती हैं-

रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः ।

यक्ष्मातङ्कगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः ॥

अन्य रोगोंकी अपेक्षा प्रत्येक प्राणी इससे अधिक पीड़ित होते हैं । ज्वरके आक्रमणको देवता और मनुष्य ही सह सकते हैं । इतर जीव तो इसके आक्रमणसे जीवित ही नहीं रह सकते । पूर्वाचार्योंका कथन है कि क्षय, पाप और मृत्यु ये ज्वरके ही प्रतिरुप हैं और इसकी उत्पत्ति भी दुष्कर्मोंसे ही होती हैं । तृष्णा, संताप, अरुचि, अङ्गपीड़ा और हृदयकी वेदना - ये सब ज्वरकी शक्तियाँ हैं । समनस्क (मनसंयुक्त) शरीर ही ज्वरका अधिष्ठान है और शारिरीक तथा मानसिक संताप होना ही ज्वरका लक्षण है । ज्वर होनेके पीछे जिन्हें

किसी प्रकारका कष्ट न हो ऐसे प्राणी संसारमें नहीं हैं । प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि या तो रोगादिकी असह्य पीड़ासे ज्वर होता है या ज्वर ही आगे चलकर दुश्चिकित्स्य होकर अन्य रोग उत्पन्न कर देता है । विशेषता यह है कि अन्य रोगोंकी अपेक्षा यह प्रत्येक प्राणीके रोम - रोममें व्याप्त हो जाता है । अतः प्रसङ्गवश यहाँ ज्वरक परिचय पहले दिया है । शास्त्रकारोंने ज्वरको ' रोगोंका राजा ' कहा है ।

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ (माधव)

सुश्रुतने इसको रुद्रकोपकी अग्निसे उत्पन्न और सम्पूर्ण प्राणियोंको तपानेवाला बतलाया है ।

रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः । (सुश्रुत)

पुराणोंमे इसको रुद्रसम्भूत ३ ' रोद्री ' (उष्णज्वर) और विष्णूसम्भूत ' वैष्णवी ' (शीतज्वर) लिखा है ।

प्रोक्तःश्वोणज्वरो रौद्रः शीतलो वैष्णवज्वरः । (सविता)

सूर्यारुणादिने इसको यमके समान भयकारी, महाकाय, ऊर्ध्वकेश, ज्वलरत्कान्ति, दीर्घरुप और तीन नेत्रोंवाला सूचित किया है-

ज्वरस्त्रिनापदभव्यश्च दीर्घरुपो भयानकः ।

बृहत्त्रिनेत्रैर्सदनौस्त्रिभिश्च दशनैर्दृढः ॥

ऊर्ध्वकेशो महाकायो ज्वलत्कान्तिर्यमोपमः । (सूर्यारुण)

हरिवंशमें इसके तीन मस्तक, छः भुजा, नौ - नौ नेत्र और तीन चरण निर्दिष्ट किये हैं। देवासम्भूत होनेसे विदेहने इसको पूजनीय बतलाया है-

ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्पति । (विदेह जनक)

वैज्ञानिक दृष्टिसे देखा जाय तो ज्वर होनेपर ऐसी ही परिस्थिति प्रतीत हुआ करती है । इस विषयमें एक कथा भी है । उसमें कहा है कि ' बाणासुरके साथ अनिरुद्धका युद्ध हुआ । उस समयी इसी ज्वरने बलरामको पराजित

और श्रीकृष्णको स्तम्भित बनाया था । इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने इसके सर्वगत होनेका वर दिया था ।' वास्तवमें बहुत - से रोगोंका लय और उद्य ज्वरसे ही होता है । जन्म - मरण या जीवनमें भी ज्वर रहता है । दूसरे शब्दोंमे यह भी कह सकते हैं कि अधिकांश रोगी और रोग ज्वरसे ही जीते और मरते हैं । ज्वर प्राणिमात्रका प्राणान्तक, देह, इन्द्रिय और मनका संतापाक और बल, वर्ण, ज्ञान तथा उत्साहको शिथिल करनेवाला है । पूर्वोक्त कथके प्रसङ्गमें ही कहा गया है कि ' श्रीकृष्णने ज्वरको तीन भागोंमे विभाजित कर एक भागको चौपायोंमें, दूसरे भागको स्थावरों (पर्वतादि) में और तीसरे भागको मनुष्योंमें विभक्त किया । विशेषता यह की थी कि मनुष्योंके तीसरे भागको मनुष्योंमें विभक्त किया । विशेषता यह की थी कि मनुष्योंके तीसरे भागका चतुर्थांश ज्वर पक्षियोंमें नियुक्त किथा था । वृक्षोंकी १ जड़ोंमें कीड़ा,पत्तोमें पीलापन, फलोंमें विकार, कमलमें शीतलता, भूमिमें ऊषरता, जलमें सेंवाल या कुमुदिनी, मोंरोमें कलङ्गी, पर्वतोंमें गेरु और गोवंश (गाय, बैल एवं

भैस) में मृगी (या मूर्छा) - ये सब उसी (ज्वर) के रुप है ' इस प्रकार बतलाया है ।-

नाना तिर्यगयोन्यादिषु च बहुविधैः श्रूयते ।

(माधवी)

पाकलः स तु नागानामभितापश्च वाजिनाम् ।

गवामीश्वरंज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः ॥

अजावीनां प्रलापाख्यः करभे चालसो भवेत् ।

हरिद्रो माहिषाणां तु मृगरोगो मृगेषु च ॥

पक्षिणामभिघातस्तु मत्स्येष्विन्द्रे मदो मतः ।

पक्षपातः पतङ्गानां व्यालेष्वाक्षिकसंज्ञकः ॥

(माधवटिप्पणी)

अस्तु, शरीरगत बात, पित्त कौर कफके बिगड़ने, सुधरने या समान रहेनेके अनुसार अनेक प्रकारका ज्वर होता है ।

१.संतत

उसमें जो ' संतत ' १ (सात, दस या बारह दिन निरन्तर बना रहे)-

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥

संतत्या यो विसर्गी स्यात् संततः स निगद्यते ।

२.सतत (दिन - रात बना रहे)-

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ।

३. अन्येद्युष्क ' (दिन - रातमें एक बार हो)-

अन्येद्युष्करस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्तते ।

४. तृतीयक (तीसरे दिन हो)-

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि ।

५. ' चातुर्थिक ' (चौथे दिन) हो,

चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ।

वह ' विषम ज्वर ' माना गया हैं -

केचिद् भूताभिषङ्गोत्थं वदन्ति विषमज्वरम् । (माधव)

माधवने इसको भूतावेश बतलाया है और उसकी शान्तिके लिये पूजा और बलिदान निर्दिष्ट किये हैं । जिन कारणोंसे ज्वर होता है, उनमें अभिघात, अभिशाप, अभिचार, अहिताचरण, अगम्यागमन, मिथ्याहारविहार, अनुपयुक्त पुष्प - गन्ध या औषधगन्ध, अनुक्त औषध, ऋतुविपर्यय, मिथ्याभय, महाशोक, बहुभोजन, विषव्रण, परिश्रम, मृतवत्सप्रसव, क्षय, अजीर्ण और दुग्धपूर्ण स्तन आदि मुख्य हैं । ज्वर और उसके वर्ण - भेद या उपाय आदि आयुवेदके मान्यतम ग्रन्थोंमें बहुत कुछ बतलाये गये हैं । अतः यहाँ

उनके विषयमें और कुछ लिखनेकी अपेक्षा व्रतोपवासादिके द्वारा ज्वरादि रोगोंसे मुक्त होने के साधन सूचित किये हैं। उनमें भी सर्वप्रथम ज्वरको ही लिया है।

१.पापसम्भूत ज्वरहरव्रत

(सूर्यारुण कर्मविपाक, अध्याय ४२)

दीर्घ कालके ज्वरसे आकुल हुए आतुरको चाहिये कि वह ' रौद्री ' (उष्णज्वर) की निवृत्तिके लिये अष्टमी अथवा चतुर्दशीको और ' वैष्णवी ' (शीतज्वर) की निवृत्तिके लिये एकादशी या द्वादशीको अथवा रौद्री, वैष्णवी किसीके लिये भी महापर्वकी किसी भी तिथिको यथासामर्थ्य (यथावत् या मानसिक) प्रातःस्नानादिक निवृत्त होकर कम्बलादिके शुभासनपर पूर्व या उत्तर मुख होकर बैठे हाथमें जल, फल, गन्ध, अक्षत औ पुष्प लेकर-

'मम पापसम्भूतज्वरप्राप्तिकामनया श्रीमहेश्वर वा महाविष्णुप्रीतये च रुद्रविष्णुपूजनपूर्वकज्वरपूजनं तद्व्रतं च करिष्ये ।'

इस प्रकार संकल्प करके जितनी सामर्थ्य हो, उतने ही सुवर्णका पत्र बनवाकर उसमें उपर्युक्त प्रकारके यमोपम ज्वरक स्वरुप अङ्कित करावे और ' विष्णुमन्त्न ' ' इदं विष्णु०' या ' सहस्त्रशीर्षा०' आदि १६ मन्त्रोंसे विष्णुका और रुद्र - मन्त्र' नमः शम्भवाय०' या ' नमस्ते रुद्र०' के १६ मन्त्रोंसे रुद्रका पूजन करके उपर्युक्त ज्वर - मूर्तिको उनके समीपमें स्थापित करके उसका-

'ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुद्रगणाय भीममूर्त्तये सर्वलोकभयंकराय मम तापं हर हर स्वाहा ।'

इस मन्त्नसे पूजन करे । फिर इसी मन्त्नका जितना बन सके जप करके सफेद सरसोंसे उसका दशांश हवन करे । इसके पीछे सत्पात्र ब्राह्मणोंको भोजन कराकर सुवर्णकी

दक्षिणा दे और स्वयं एकभुक्त व्रत करे। इस प्रकार एक, तीन या सात बार करनेसे ज्वर शान्त हो जाता है।

२. सर्वज्वरहरव्रत

(सूर्यारुणकर्मविपाक, अध्याय ४२) -

पूर्वोक्त शुभ समयमें यथापूर्व स्नानादि करनेके अनन्तर व्रत धारण करके संकल्प करे और सामर्थ्य हो तो ५० पल (२ सौ तोला या २ ॥ सेर) ताँबेका और सामर्थ्य न हो तो मिट्टीका कलश लेकर उसको लाल वस्त्रसे भूषित करके उसमें घी, चीनी, शहद या गुड़ भरे और यथासामर्थ्य पञ्चरत्न अथवा उनके प्रीतिनिधि अक्षत रखे। उसे रेशमी वस्त्रमें वेष्टित करके चावलोंके पुञ्चपर स्थापित करे। तदनन्तर विष्णु, रुद और ज्वरका गन्ध - पुष्पादिसे पूजन करके उनके समीप बैठकर-

' ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुदगणाय सर्वलोकभयंकराय मम तापं हर हर स्वाहा।'

इस मन्त्रका जप करके इसीसे हवन करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर

'भस्मप्रहरणो रौद्रास्त्रिशिरास्त्र्यूर्ध्वलोचनः।

दानेनानेन सुप्रीतो ज्वरः पातु सदा मम ॥

एकान्तरं संनिपातं तार्तीयकचतुर्थिकौ ।

पाक्षिकं मासिकं वापि सांवत्सरिकमेव च ।

नाशयेतां मम क्षिप्रं वासुदेवमहेश्वरौ ॥'

इसका उच्चारण करके ज्वरमूर्तिका दान करे, तो ज्वरजनित सभी उपद्रव शान्त होते हैं ।

३.ज्वरहर बलिदानव्रत

(भैषज्यरत्नावली)

चिरकालीन ज्वरकी शान्तिके लिये अष्टमीके अपराह्णमें चावलोंके चूर्णसे मनुष्यकी आकृतिका पुतला बनाकर

उसके हलदीका लेप करे। मुख, हदय, कण्ठ और नाभिमें पीली कौड़ी लगावे, फिर खसके आसनपर विराजमान करके उसके चारों कोणोंमें पीले रंगकी चार पताका लगावे तथा उनके पास हलदीके रससे भरे हुए पीपलके पत्तोंके पत्तोके चार दोने रखे और

'मम चिरकालीनज्वरजनितपापतापादिशप्रशमनार्थं ज्वरहबलिदानं करिष्ये।'

यह संकल्प करके पुतलेका पूजन करे। सायंकाल होनेपर ज्वरवाले मनुष्यकी-

ॐ नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्तिरस्तु स्वस्तिरस्तु स्वाहा।

ॐ कं ठं यं सं वैनतेयाय नमः।

ॐ ह्लीं क्षः क्षेत्रपालाय नमः।

ॐ ठः ठः भो भो ज्वर श्रृणु श्रृणु हल हल गर्ज गर्ज नैमित्तिकं मौहूर्त्तिकं एकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं पाक्षिकादिकं च फट् हल हल मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा ।'

इस मन्त्रसे तीन या सात आरती उतारकर पूर्वोक्त पुतलेको पूजा - सामग्रीसहित किसी वृक्षके मूल, चौराहे या श्मशानमें रख आवे । इस प्रकार तीन दिन करे और तीनों ही दिनोंमें नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे । स्मरण रहे कि पुत्तलपूजन बीमारके दक्षिण भागके स्थानमें करना चाहिये । इससे ज्वरजात व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त होती हैं ।

ज्वरहरतर्पणव्रत

(मन्त्रमहार्णव)

ज्वरवाले मनुष्यको चाहिये कि वह दशमी या सप्तमीके सुप्रभातमें प्रातःस्त्रानादि करनेके अनन्तर ताम्रपात्रमें जल, तिल, रँगे हुए लाल अक्षत और लाल पुष्प डालकर डाभके आसनापर पूर्वाभिमुख बैठे और अर्घामें अथवा अञ्चलिमें जल लेकर ' उष्ण ' ज्वर हो तो-

'योऽसौ सरस्वतीतीरे कुत्सगोत्रसमुद्भवः ।

त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्दसंज्ञकः ॥

ज्वरापनुत्तये तस्मै ददाम्येतत तिलोकदम् ।'

इस मन्त्नसे जल छोड़े और इस प्रकार १०८ बार तर्पण करे। यदि शीतज्वर या रात्रिज्वर हो तो

गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः ।

रात्रौ ज्वरविनाशाय तस्मै दद्यात् तिलोकदकम् ॥'

इस मन्त्रसे तर्पण करे । ज्वर यदि सामान्य हो तो १०८ बार और यदि विशेष हो अथवा बहुत दिनोंका हो तो ज्वरके अनुसार १०८ या १००१ अथवा १०००१ अञ्चलि दे । इस

प्रकार एक, तीन, पाँच या सात दिन करे और एकभुक्त व्रत रखे ।

ज्वरार्तिहरतन्त्रव्रत

रविवारके प्रातःकालमें काँसीके पात्रको जलसे भरकर उसमें सात सूई डाले और उनका गन्ध - पुष्पादिसे पूजन करके सातोंको एकत्र कर

ॐ वज्रहस्ता महाकाया वज्रपाणिर्महेश्वरी ।

हरेत् स्ववज्रतुण्डेन भूमिं गच्छ महाज्वर ॥'

इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ सात बार घुमावे और फिर उनमेंसे एक सूई निकालकर भूमिमें गाड़ दे । इस प्रकार दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी आदि निकालकर सात दिनमें सातों सूइयाँ गाड़ दे और एकभुक्त व्रत करे । अथवा नागवल्लीदलमें दाड़िमकी लेखनी और कर्पूर, अगरु एवं कस्तूरी मिले हुए केसर - चन्दनसे

वज्रदंष्ट्रो महाकायो वज्रपाणिर्महेश्वरः ।

वज्रवत्सर्वदेहस्त्य भुवं गच्छ महाज्वर ॥

यह मन्त्र लिखकर उसका गन्धादिसे पूजन करे और ज्वरवालेको खिला दे । अथवा

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।

प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

ॐ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

इन दोनोंमेंसे किसी एकके १०८ या ज्वरानुसार न्यूनाधिक जप करे और

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यनि सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

इसका उच्चारण कर तीन आचमन करे तो इन उपायोंसे एकान्तरा, तेजरा, चौथिया या नित्य रहनेवाला - सभी ज्वर शान्त हो जाते हैं । इनमें एकभुक्त व्रत करना चाहिये ।

अतिसारहरव्रत

(अनुष्ठान - प्रकाश)

यह रोग कर्मविपाक के अनुसार जलाशयादि नष्ट करनेके पापसे या आयुर्वेदके अनुसार प्रमाणासे अधिक या गरिष्ठ अथवा अत्यन्त पतला या अत्यन्त स्थूल भोजन करने आदिसे होता है-

गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलतिशीतलैः ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ (माधव)

अतिसारीको चाहिये कि वह शौचादिसे निवृत्त होकर 'सौऽग्निरस्मी०' मन्त्रका यथाशक्ति जप करके उसी मन्त्रसे दशांश हवन करे और एकभुक्त व्रत करके शक्तिके अनुसार सुवर्णका दान दे ।

संग्रहणीशमनव्रत

प्रेमपूर्वक सद्वर्ताव करनेवाली श्रेष्ठ स्त्रीका त्याग करने या अतिसारमें कुपथ्य करनेसे उदरगत छटीकला (ग्रहणी) के नष्ट होनेसे ' संग्रहणी ' होती है-

साध्वीं भार्यां च यो मर्त्यः परित्यजति कामतः ।

ग्रहणीरोगसंयुक्तः सदा भवति मानवः ॥ (शिवगीता)

इससे मुक्त होनेके लिये किसी पुनीत पर्वमें या शनिप्रदोष हो उस दिन प्रातःस्त्रानादिसे निवृत्त होकर शिवजीका पूजन करे और वहीं उनके समीपमें ' शिवसंकल्पसूक्त '(यज्जाग्रतो०, येन कर्माण्य०, यत्प्रज्ञान०, येनेदं भूतं०, यस्मिन्नृचः०, सुखारथि० - इन छः मन्त्रो) का १०८ जप करके सौंफ, मिर्च, इलायची और मिश्रीको घीमें भिगोकर पलाशकी समिधाओंमें अट्ठाईस आहुतियाँ दे और शहदमें सुवर्ण डालकर उसका दान करके नक्तव्रत करे । इस प्रकार दस दिन करनेके अनन्तर ग्यारहवें दिन यथाशक्ति अन्नदान करे तो संग्रहणी शमन होती हैं ।

अर्शहरव्रत

(अनुष्ठान - प्रकाश)

जो मनुष्य वेतन लेकर अध्यापन, यजन, हवन या जपादि करते हैं, उनको अर्शरोग होता है-

वेतनमादाय योऽधायपत्यर्चयति जुहोति जपति सोऽर्शो रोगवान् भवति ।

आयुर्वेदमें इसको त्रिदोषजन्य और परम्परासे आनेवाला बतलाया है । इसकी निवृत्तिके लिये चान्द्रायणव्रत करे और उन दिनोंमें प्रतिदिन आठ या अट्ठाईस पाठ आदित्यहृदयके करके शमीकी समिधा और घीसे हवन करे । इस प्रकार करनेसे अर्शरोग दूर होता है । एकभुक्त व्रत करना आवश्यक है ।

अजीर्णहरव्रत

(ऋग्विधान)

बहुत दिनोंका अजीर्ण भुक्त पदार्थोंके अपाचन, चिन्ता आदि कारणोंसे होता है-

यस्य भुक्तं न जीर्येत न तिष्ठेद् वा कथञ्चन ।

तस्मादजीर्णरोगोऽयं ....॥ (पराशर)

अत्यम्बुपानाद् विषमाशनाच्च

संधारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।

कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्त-

मन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन ।

प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥

(माधव)

इसके लिये ' अग्निरस्मि०' ऋचाके एक हजार जप और घृतप्लावित त्रिकुटा (सोंठ, मिरच और पीपल) की एक सौ

आहुति देकर उपवास करे और दूसरे दिन वेदज्ञ ब्राह्मणको हविष्यान्नका भोजन कराकर पारण करे ।

मन्दाग्नि - उपशमनव्रत

(वृद्धपराशर)

यदि मिल सके तो शुक्लपक्षके सप्तमी पुष्यार्क अथवा दशमी गुरुवारको 'अग्निसूक्त' 'श्रीसूक्त' अथवा 'जातवेदसे ' ऋचाके जप और चाँदीके मेष (मेढा) का दान करके पलाश (छीला) की समिधाओंमें घीसे हवन करे और एकभुक्त (किसी भी एक पदार्थको भक्षण कर) व्रत करे । इस प्रकार करनेसे मन्दाग्नि नष्ट हो जाती है । सूर्यारुणके कथनानुसार अभक्ष्य - भक्षणके दुष्प्रभावसे और आयुर्वेदके मतानुसार कफ - प्रकृतिसे मन्दाग्नि होती है

विषूचिकोपशमनव्रत

(योगवासिष्ठ) - दुष्ट भोजन, २ दुष्टारम्भ, दुष्ट संग, दुष्ट स्थिति और दुर्देशवास या अजीर्णकी अवस्थामें उदरके १ अंदर सूई गड़ने - जैसी पीड़ा होनेसे विषूचिका रोग (हैजा) होता है-

दुर्भोजना दुरारम्भा मूर्खा दुःस्थितयश्च ये ।

दुर्देशवासिनो दुष्टास्तेषां हिंसां करिष्यति ॥ (यो० वा०)

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः

इसको रोकनेके लिये मन्त्र - शास्त्री धर्मप्राण साधकको चाहिये कि वह विषूचिकावाले रोगीको प्राण - दान देनेकी कामनासे तत्काल पवित्र होकर रोगीके उदरपर बायाँ हाथ रखे और दाहिने हाथसे-

ॐ ह्लीं ह्लीं रां रां विष्णुशक्तये नमः । ॐ नमो भगवति विष्णुशक्तिमेनाम् ।ॐ हर हर नय नय पच पच मथ

उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा । हिमवन्तं गच्छ जीव सः सः सः चन्द्रमण्डलतोऽसि स्वाहा ।'

इस मन्त्रसे हिमालयके उत्तर पार्श्वमें रहनेवाली कर्कशा कर्कटी राक्षसी (अथवा बीमारके प्लीहा पद्म या नाभिप्रदेशके उत्तर प्रदेशमें सूई गड़ानेके समान असहनीय दर्द करनेवाली विषूचिका राक्षसी) का मार्जन करे और व्रत रखे । इस प्रकार जबतक वेगहीन न हो तबतक करता रहे । इससे विषूचिकावालेको शान्ति प्राप्त होती है ।

पाण्डुरोगप्रशनमव्रत

देवता २ और ब्राह्मण - इनके द्रव्यका अपहरण करने या वात, पित्त, कफ - इन तीनोंसे अथवा संनिपातसे और मृद्भक्षण (मिट्टी खाने) से पाण्डुरोग होता है-

देवब्राह्मणद्रव्यापहारी पाण्डुरोगवान् ॥ (अ० प्र०)

इसके निवारणके निमित्त कृच्छ्रतिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करके सुवर्णका दान दे और कूमाण्डी हवन करे ।

रक्तपित्तोपशमनव्रत

पूर्वजन्ममें वैद्यशास्त्रके पूर्णानुभवसे मदान्ध होकर आतुर भेषजमें युक्त औषधकी अपेक्षा अयुक्त प्रयुक्त करने अथवा इस जन्मनें धूपमें घूमने, अधिक श्रम करने, बहुत ज्यादा चलने, अधिक स्त्री - प्रसंग करने, नमक - मिर्च ज्यादा खाने अथवा कोप करने आदिसे रक्त - पित्त होता हैं । इसकी शान्तिके लिये स्नान करके ' ॐ अग्निं दूतं वृणीमहे०' आदि मन्त्रोसे आग्निमें घी और खीरकी १०८ आहुति दे और घृतप्लावित पदार्थोंका एक बार भोजन करके व्रत करे

राजयक्ष्मोपशमनव्रत

(धर्मशास्त्रपुराणायुर्वेदादि)

राजयक्ष्मा जन्मान्तरमें किये हुए महापापोंका द्योतक है । शातातपने कहा है कि ' यह रोग साक्षात् ब्रह्महत्या करने या राजाको मारनेसे होता है-

ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् ' । (शातातप)

ब्राह्मणं घातयेद् यस्तु पूर्वजन्मनि मानवः ।

मोहादकामतः सोऽपि क्षयरोगसमन्वितः ॥

राजघातकरः प्रोक्तो यः पूर्वं घातयेन्नृपम् ।

राजयक्ष्मान्वितः सोऽत्र तस्मिन् वयसि रोगवान् ॥

(सूर्यारुण कर्मविपाक)

वास्तवमें अन्य रोगोंकी अपेक्षा राजयक्ष्मासे मनुष्यकी बड़ी दुर्दशा होती हैं । आयुवेदके मान्यतम ग्रन्थोंका मत है कि ' राजयक्ष्माको मिटानेवाली मुख्य औषध मृत्यु है । सद्वैद्य, सदौषध, सदुपचार और नियमपालक रोगी होनेपर भी राजयक्ष्मावाला रोगी अधिक - से - अधिक एक हजार दिन (२ वर्ष ९ महिने १० दिन) जीवित रह सकता है ।' इसके

अतिरिक्त अन्य रोगी तो चार, छः या आठ मासमें ही मर जाते है और उसके रक्त, मज्जा, मांस और अस्थिपञ्जर - पर्यन्त सूख या घिस जाते हैं । आयुर्वेदके मतानुसार २ वेगरोध (मल - मूत्रादिके आते हुए वेगको रोकने), क्षय (अत्याधिक स्त्री - प्रसंगादिके द्वारा रज और वीर्यका नाश करने), साहस (अपनेसे अधिक बलीके साथ युद्ध - कसरत या वैर करने अथवा बहुत भागने) और विषमाशन (समय - असमय; एक बार, अनेक बार; कभी अल्पाहार, कभी अमिताहार) और कभी क्षुधा, तृषा या निद्राके बहुत दबानेपर भी उनको बलात् रोकने आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा होता है-

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद् विषमाशनात् ।

त्रिदोषाज्जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ (चरक)

विशेषता यह है कि बहुव्ययसाध्य सर्वोत्कृष्ट औषध या उपचार करनेपर भी यह रोग घटता नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है । इसके विपरीत रोगी यह मानता है कि ' मैं '

अच्छा हो रहा हूँ ब्राह्मणों के राजा चन्द्रमा को होने से यह राजयक्ष्मा कहा जाता है -

राजश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः ।

तस्मात् तं राजक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

क्रियाक्षयकरत्वत्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः ।

संशोषणाद रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥ (भाव०)

इस विषयमें स्वयं सूर्यनारायणने कहा है कि ' यह रोग २ केवल औषध - सेवनसे क्षीण नहीं होता । इसके लिये औषध - सेवनके सिवा दान, ३ दया, धर्म, दीनोपकार, गो - द्विज - देवादिका अर्चन, व्रत, जप, हवन और तप करने (अथवा शरीर और संसारसे निर्मोह होकर ईश्वर - स्मरणमें निरन्तर मन लगाने) की आवश्यकता है-

निष्कृत्त्या कर्मजन्मोत्थो दोषजस्त्वौषधेन हि ॥

उभयाज्जयमानस्तु निष्कृत्यौषधसेवया । (सूर्यारुण)

दानेर्दयाभिरतिथिद्विजदेवतागो-

देवार्चनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः ।

इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयामानं

प्राकपापजातमशुभं प्रशमं नयन्ति ॥ (सूर्य

यक्षान्तक सुवर्णकदली - दानव्रत

(सूर्यारुण कर्मविपाक)

राजयक्ष्माके रोगीको चाहिये कि वह अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णका कदली - वृक्ष बनवावे । जिसमें फल, पत्ते और मुकुल (फूलकी डोडी) यथावत् हों । यदि सामर्थ्य न हो तो साक्षात् कदली - वृक्ष मँगवावे और शुभ दिनमें शौचादिसे निवृत्त होकर शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर-

मम जन्मान्तरीयपापजनितप्राणान्तकराजयक्ष्मोपशमन-कामनया श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थे सुवर्णकदली - (ससुवर्ण - कदली वा -) दानं करिष्ये ।

यह संकल्प करके विनिर्मित या सिञ्चित कदलीको वस्त्रादिसे भूषित कर पूजन करे और जप, तप, होम तथा व्रत आदि सम्पूर्ण कर्म समाप्त होनेके पीछे आत्माको जाननेवाले धर्मप्राण दयावान् वृतस्थायी और पूजनीय पण्डितको सुपूजित कदलीका दान दे । उस समय

हिरण्यगर्भ पुरुष परात्पर जगन्मय ।

रम्भादानेन देवेश क्षयं क्षपय मे प्रभो ॥

का उच्चारण करे । तत्पश्चात् विद्वान् ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन कराकर उनको भोजन करावे और फिर शिष्ट तथा इष्ट मनुष्योंको भोजन कराकर व्रतको समाप्त करे । इस प्रकार करनेसे राजयक्ष्मा शान्त होता है ।

यक्ष्मान्तक दानव्रत

(सूर्यारुण कर्मविपाक)

औषधोपचारादिसे यदि यक्ष्मा शान्त न हो तो ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ दिनमें प्रातःकालीन कृत्यसे निवृत्त

होकर अपनी सामर्थ्यके अनुसार गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, मिष्टान्न, वस्त्र, जल, फल, लोह और तिल - इन सबका यथाविधि दान करे। यदि यह न बन सके तो लोहेके घड़ेमें तिल भरकर गन्ध - पुष्पादिसे पूजन करके, उसे सत्पन्न प्रतिग्राहीको दे। अथवा - ' आते रौद्रेण०' सूक्तका जप करके उसकी प्रत्येक ऋचासे आहुति दे और फिर शिवजीका उपस्थान करके ' त्र्यम्बकं यजामहे०' का एक मासतक जप करे। इससे भी रोग शान्त होता है।

यक्ष्मोत्पत्ति

(कालिकापुराण)

क्षययक्ष्मा अथवा राजयक्ष्माके विषयमें कालिकापुराणकी कथाके श्रवण करनेसे अपूर्व लाभ होता है। कथा इस प्रकार है - ' दक्षप्रजापतिके सत्ताईस कन्याएँ थीं। उनका चन्द्रमाके साथ विवाह हुआ। उनमें एकका नाम रोहिणी था; औरोंकी अपेक्षा चन्द्रदेव उससे अधिक प्रसन्न रहते थे

। यह देखकर अन्य पत्नियोंने पितासे प्रार्थना की । तब दक्षने चन्द्रदेवको समझाया कि आप सबके साथ समान स्नेह रखें किंतु चन्द्रमाने ऐसा नहीं किया । तब दक्षप्रजापति बड़े क्रोधित हुए और उनके क्रोधानलसे राजयक्ष्मा उत्पन्न होकर चन्द्रमाके शरीरमें प्रविष्ट हो गया । फिर क्या था, चन्द्रदेव प्रतिदिन क्षीण होने लगे और उनका विश्वव्यापी सुप्रकाश भी घट गया । चन्द्रमाकी इस क्षीणकाय अवस्थासे संसारकी हनि समझकर ब्रह्माजीने उनके शरीरसे यक्ष्माको निकाल लिया और आज्ञा दी कि ' जो लोग स्त्रीके साथ अधिक सहवास करें उनके शरीरमें तुम सुखसे रहो । वहाँ मृत्युकी पुत्री तृष्णा तुम्हारी आज्ञामें रहेगी । वह तुम्हारे ही समान गुणवाली है । अतः तुम जो चाहोगे वही कर सकेगी । इसके सिवा जो लोग श्वास, कास और कफके रोगी होकर भी स्त्रीके साथ सहवास रखें , उनके शरीरमें भी तुम प्रविष्ट रहो और उनको प्रतिक्षण क्षीण करते रहो । जाओ, तुम यथेच्छ विचरण करो । तुम्हारा यह काम स्थायी रहेगा ।' ऐसा ही हुआ और तब अधिक हो रहा है।

यक्ष्मान्तक सानुष्ठान - व्रत

राजयक्ष्मावाले रोगीको चाहिये कि वह सत्पात्र ब्राह्मणको बुलवाकर उससे त्र्यम्बकमन्त्नका पुरश्चरण करनेकी प्रार्थना करे और उसके स्वीकार करनेपर दृढ़ व्रतके साथ यह आज्ञा करे कि इससे मैं अवश्य आरोग्य लाभ करुँगा । तत्पश्चात् सदनुष्ठानी ब्राह्मण शिवजीके मन्दिरमें बैठे और पार्थिव मूर्तिका निर्माण करे, फिर उसका पञ्चोपचार पुजन करके त्र्यम्बकमन्त्र का एक हजार जप करे । अथवा

' ॐ जूं सः अमुकं पालय पालय सः जूं ॐ '

इस मन्त्र का १० हजार जप करे । जप करते समय शिवमूर्तिके अपलक दर्शन करता रहे और यह प्रार्थना करे कि ' हे मृत्युञ्जय ! जिसके निमित्त मैं जप करता हूँ, उसका राजयक्ष्मासे कोई अनिष्ट न हो ।' तत्पश्चात् पूजनके गन्ध - पुष्प और बिल्वपत्र लेकर रोगीके नेत्र, ललाट और हृदयमें लगाकर सिरहाने रख दे । इस प्रकार प्रतिदिन नवीन पत्र

सिरहाने रखता रहे और पुराने निकालकर नदी आदिके प्रवाही जलमें डलवाता रहे । इस प्रकार करनेसे शीघ्र आरोग्य होता है ।

रोगत्रयोपशमनव्रत

(महाभारत)

पूर्वोक्त श्वास, कास और कफसे मुक्त होनेके लिये वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे शिवपूजनपूर्वक रुद्रपाठसहित सहस्रघटाभिषेक करावे और उसके समाप्त होनेपर पचास ब्राह्मणोंको उत्तम पदार्थोंका भोजन कराकर सबको समान रुपसे लाल १ वस्त्र और सुवर्ण दे -

हिरण्यं रक्तवासांसि पञ्चाशद्विप्रभोजनम् ।

सहस्त्रकलशस्त्रानं कुर्याद् रोगस्य शान्तये ॥ (व्यास)

अथवा अच्युत , अनन्त और गोविन्द - इन तीनों नामोंके तीस हजार आठ जप करे और सात्त्विक पदार्थोंको भगवानको अर्पण करके नक्तव्रत करे-

अच्युतानन्तगोविन्द्रत्येतत्रामत्रयं द्विज ।

अयुतत्रयसंख्याकं जपं कुर्याद्धि शान्तये ॥ (शङ्खगीता)

शूलरोगोपशमनव्रत

(मदनमहार्णव) - शान्त, गम्भीर और श्रुतिके अध्यापनमें समर्थ किंतु अकिञ्चन और याचना करनेवाले ब्राह्मणको बुलाकर भी जो कुछ नहीं देता, वह जठरशूलसे पीड़ित होता है । आयुर्वेदके मतानुसार कसरत करने, बहुत चलंने, अधिक जगने, अति मैथुन करने, बहुत शीतल जल पीने, मूँग, अरहर, कोदो या सूखे पदार्थ खाने, भोजन - पर - भोजन करने, भिगोकर उगाये हुए तन्तुयुक्त मूँग, मोठ या चौंले खाने और मल - मूत्र - वीर्य या अपान वायुका वेग

रोकने आदि कारणोंसे शूल - रोग होता है । हारीतने इसकी जन्मकथा इस प्रकार कही है कि ' कामदेवका नाश करनेके निमित्तसे शिवजीने त्रिशूल फेंका था । उससे भयभीत होकर कामदेव भगा और विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो गया । तब विष्णुने हुंकारसे त्रिशूलको गिरा दिया और वह भूमण्डलमें आकर शूल नामसे विख्यात हुआ । पञ्चभूतात्मक देहधारी कुपथ्यादिवश उसीसे पीड़ित होते हैं-

अनङ्गनाशय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च ।

तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥

स विष्णुहुङ्खरविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः।

स पञ्चभूतानुगतः शरीरं प्रदूषत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥

(हारीतसंहिता)

ऐसे त्रिशूलसम शूल - रोगसे मुक्ति पानेकी इच्छावाला मनुष्य यथासामर्थ्य अन्नदान और ' नमस्ते रुद्र मन्यवे० ' का जप करे और दृढ़व्रती रहे -

शूली परोपतापेन जायते वपुषा तनुः ।

सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेद् बुधः ॥ (रुद्रविधान)

गुल्मोपशमनव्रत

(अनुष्ठान - प्रकाश)

गुरुके हितकर वाक्योंका अहितकर अर्थ करने अथवा मिथ्याहारविहारादिसे बिगड़े हुए वातादि दोष उदय होकर उदरके अंदर दोनों पसवाड़ोंमे और हृदय, नाभि तथा वस्तिस्थानमें गुल्म उत्पन्न करते है । उसके निवारणके निमित्त फाल्गुनके व्रतपरिचयमें बतलाये हुए क्रमके अनुसार एक महीनेका ' पयोव्रत ' करे और ' वात आयातु

भेषज०' इस मन्त्र के दस हजार जप और इसी मन्त्रसे घी और खीरका हवन करे-

ॐ वात आयातु भेषज शंभूर्मयो भूनों हदे प्राण आयूँषि तारिषत् । (यजुः संहिता)

इससे अनिष्टकर गुल्मका कष्ट दूर हो जाता है ।

उदरान्तरीय रोगोपशमनव्रत

(मन्त्नमहार्णव)

जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशमें भेद मानते हैं, उनके उदरगत व्याधियाँ होती है-

यो ब्रह्मविष्णुरुद्राणां भेदमुत्तमभावतः ।

कुर्यात् स उदरव्याधियुक्तो भवति मानवः ॥ (शातातप)

उनके निवारणके लिये कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत, ' उद्यन्भ्राज ०' मन्त्र के दस हजार जप और शिवजीका सहस्रघटाभिषेक करनेसे सम्पूर्ण व्याधियाँ दूर होती हैं ।

जलोदरहरव्रत

(मदनमहार्णव)

मिट्टी या भस्मसे माँजे हुए ताम्रादिके महापात्रको जलसे पूर्ण करके उसका पञ्चोपचार पूजन को और उसी जलसे शिवजीका सहस्त्रघटाभिषेक करे तथा सौ ब्राह्मणोको भोजन करावे । अथवा सोना, चाँदी, ताँबा और जलधेनुका दान करके गुड़, घी और गोधूमके पदार्थोंका एकभुक्त भोजन करे ।

सहस्रकलशस्नानं महादेवस्य कारयेत् ।

भोजयेच्च शत्तं विप्रान् मुच्यते किल्बिषात् ततः ॥

(मदनमहार्णव)

प्लीहा रोग शमन

(मन्त्नमहोदधि)

भृतकाध्यापक (नौकरी लेकर पढ़ानेवालों) के या कन्याको दूषित करनेवालोंके ' प्लीहा ' - एक प्रकारकी उदरग्रन्थि, जो पेटके पार्श्व भागमें होती हैं, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है । आयुवेंदके अनुसार विदाही (बहुत दाहन करनेवाले) तथा अभिष्यन्दी (उदरगत रक्तछिद्र रोकनेवाले) अन्नादि पदर्थोंके नितन्तर खाते रहनेसे प्लीहा (तिल्ली) होती है और बेर - तुल्यसे बढ़कर तरबूजके तुल्य हो जाती है । इसको घटानेके लिये अति पवित्रताके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करके

' यो यो हनूमन्त फलफलित धग्धगित आयुराष परुडाह

इस मन्त्रके दस हजार जप करे और फिर प्लीहावाले मनुष्यको सीधा लिटाकर उसके उदरपर नागवल्लीदल (नागरबेलके पत्ते) रखे । पत्तोंके ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़ेके ऊपर सूखे बाँसके पतले -

पतले टुकड़े रखे । इसके बाद बेरकी सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थरसे उत्पन्न की हुई आगसे जलावे और प्लीहावाले मनुष्यके पेटपर रखे हुए वंशशकल (बाँसके टुकड़ों) को उपर्युक्त हनुन्मन्त्नके उच्चारणके साथ (उस जलती हुई लकड़ीसे) सात बार ताड़ित करे । इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है । उपर्युक्त विधान सात बार करना चाहिये।

उदरगुल्महरव्रत

(सूर्यारुण २९७)

इक्षुविकार (गुड़, शक्कर, चीनी और मिश्री) आदि चुरानेसे पेटके अंदर अनिष्टकारी फोड़ा उत्पन्न होता है । इन दिनों उसकी ' ट्यूमर ' नामसे प्रसिद्धि है और विशेषज्ञ वैद्य बड़ी सावधानीके साथ अस्त्रक्रियासे उसका निपात करते हैं । किसी स्त्रीके यह हो जाता है तब उसे गर्भस्थलीमें बालक होने - जैसा अभ्यास होता है और वह यथाक्रम उसी प्रकार

उसी प्रकार बढ़ता है । परंतु प्रसव - कालकी पूर्ण अवधि पूरी हो जानेपर भी कुछ न हो, तब उस उपद्रवका स्वरुप मालूम होता है ।

स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते ।

अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते ॥

(छारपाणि)

गुल्मिनामनिलः शान्तिरुपायैः सर्वशो विधिः । (चरक)

कुपितानिलमूलत्वाद् गूढ़मूलोदयादपि ।

गुल्मवद्धा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ॥ (सुश्रुत)

संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ।

कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ (माधव

अस्तु, उदरगुल्मके लिये सूर्यारुणमें लिखा है कि गुड़ - धेनुका दान करके ' मुञ्चामि०' सूक्तके एक लाख जप

और ' वात आयातु भेषजं०' से शाल्मली (सेमलवृक्ष) की समिधाओंमें घी और शक्करकी दस हजर आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं व्रत करे ।

मूत्रकृच्छ्रोपशमनव्रत

(मदनमहार्णव)

इस रोग के रोगोंको चाहिये कि वह प्रातःस्त्रानादिसे निवृत्त होनेके अनन्तर शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर

'मम मूत्रकृच्छ्रादि-प्रशनमनपूर्वक-मायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं पुरुषसूक्तस्य सहस्त्रनामस्तोत्रस्य च यथासंख्यापरिमितपाठानहं करिष्ये।

ये संकल्प करके उक्त दोनों पुरुषसूक्त और विष्णुसहस्त्रनामके पृथक् पृथक् पाठ करे ।

मूत्रकृच्छ्रहरव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक अध्याय -२१५)

जो मनुष्य ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर गौड़ी, माध्वी और यवसम्भूत सुराका पान करते हैं, उनके मूत्रकृच्छ्र होता है अथवा तीक्ष्ण भोजन, रुक्ष भोजन, सुरापान, घोड़ेकी सवारी, चक्रवाकादिका मांस और भोजन - पर - भोजन करने आदिसे मूत्रकृच्छ्र होता है । इसकी निवृत्तिके निमित्त सुवर्णका अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्यमें महाप्रभु ब्रह्माजीका आवाहनादि षोडशोपचारोंद्वारा पूजन करके सात्त्विक पदार्थोंका एक समय भोजन करे और इस प्रकार प्रत्येक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको करता रहे-

व्यायामतीक्ष्णौषधरुक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठमानात् ।

आनूपमांसाद्यशनादजीर्णात् स्युर्मत्रकृच्छ्र ....॥ (माधव

अश्मर्युपशमनव्रत

पूर्वजन्मके अगम्यागमनादि महापापोंके प्रभावसे अथवा वात, पित्त, कफ और शुक्रके विकृत होनेसे अश्मरीका

आक्रमण होता है। उसके प्रतीकारके लिये ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्तमें प्रातःस्त्रानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'

इस मन्त्रका दस हजार बार जप करे और पलाश (छूल) की समिधा तथा घीसे इसी मन्त्रकी एक हजार आहुति दे तथा दूध पीकर रहते हुए ईश्वरका स्मरण करे ।

प्रमेहरोगोपशमनव्रत

(अनु० प्रकाश)

यह रोग अनेक प्रकारका होता है । धर्मशास्त्रोंके अनुसार किसी भी जन्ममें माता, सास, गुरुपत्नी, रानी तथा मित्र - मातामें गमन करनेसे ' मधुमेह ', भ्रातृभार्या (भौजाई) में गम करनेसे ' जलमेह ', भगिनीमें गमन करनेसे ' इक्षु '

(रस) मेह, अमा, पूर्णिमा या ग्रहणमें स्त्री - प्रसंग करने तथा कन्यामें गमन करनेसे ' बालमेह ', चाण्डाली या मेहतरी आदिमें गमन करनेसे ' व्याधिकर सर्वप्रमेह ' और तिर्यग्योनि - (पशु आदि -) में गमन करनेसे ' शूलप्रयुक्तप्रमेह ' होता है । आयुवेंदके अनुसार सुखकी उपस्थिति, सुखकी निद्रा, सुखप्रद (स्त्री - प्रसङ्गकारी) स्वप्र और दूध - दही या नवीन अन्न - जल खाने - पीने आदिसे प्रमेह होता है-

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि

ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि ।

नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतु ....।। (माधव)

इसकी निवृत्तिके लिये यथायोग्य - क्षुधा और तृषा (भूखप्यास) दोनों त्यागकर निराहार तीन उपवास, तीन यवमध्य, तीन चान्द्रायण तथा तीन कृच्छ्रचान्द्रायण, पुरुषसूक्त और सहस्त्रनामके पाठ करे और अधिक पाप (या पाप और रोग दोनों) हों तो प्रतिदिन ' या ते रुद्र० '

सूक्तसे घीकी एक हजार आहुति, सुवर्ण - धेनुका दान और चालीस ब्राह्मणोंको भोजन करावे । इससे सब प्रमेह शान्त होते हैं ।

श्वयथु (शोथ) रोगहरव्रत

(मन्त्रमहार्णव)

पर्वतकी तलहटीमें, नदी आदिके तीरमें या छायाकी जगह (वृकादिके मूल) वे मल - मूत्र या खखार आदि त्यागनेके पापसे श्वयथु रोग होता है (इसको कोई - कोई दमा भी मानते हैं) । इसकी शान्तिके लिये 'सर्व इदं वो विश्वतः शरीर०' का ३०११८ बार जप करे और ' आपो हि ष्ठा मयोभुवः०'

आदिसे चरु (खीर) और घीकी एक हजार आहुति दे तथा उपवास करे।

गण्डमालाशमनव्रत

(अनु० प्रकाश)

गुरुसे द्वेष रखने और दूसरोंका चित्त दुखानेसे या मेद और कफके कारणसे गण्डमाल (काँख, कंधा, गला या सन्धि - प्रदेशादिमें बेर या आमलेके समान छोटी - बड़ी गंड - गूगड़ी) होती है । इसके निमित्त चान्द्रायणव्रत और पुरुषसूक्तके एक हजार पाठ करे ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ।
मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमाला .... ॥

(माधव)

गलगण्डहरव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक, अध्याय -२७९) -

अध्यापक तथा गुरुके साथ प्रवञ्चनात्मक व्यवहार करने या गलेमें वात, कफ और मेद होनेसे उसके दोनों ओर गलगण्ड (गलसूंडे) हो जाते हैं । इनकी शान्तिके लिये ताँबाके पात्रमें यथाशक्ति काले तिल भरकर उनके ऊपर

मोतियोंकी माला रखे और उसे पञ्चोपचारोंसे पूजन करके शुद्धहदय (निष्कपट) सदाचारी तथा धनहीन ब्राह्मणको दान दे और ग्रहशान्ति करे । इससे गलगण्ड शान्त होता है। व्रत करना भी आवश्यक है ही ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः ।

कुर्वन्ति गण्डं क्रमशस्त्रलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥

(माधव)

कुष्ठरोगोपशमनव्रत

राजयक्ष्मादिके समान यह रोग भी पूर्वजन्ममें किये हुए अगणित जीवोंकी हत्या - जैसे महापापोंका परिणाम है । किसी मनुष्य के शरीरमें इस रोगका एक छींटा भी दीख जाय तो उसके प्रति जनसमाजकी अश्रद्धा और अरुचि हो जाती हैं । आयुर्वेदके अनुसार यह रोग अठारह प्रकारका होता है तथा शरीरगत वात, पित्त और कफके कुपित होने एवं रक्त - मांस - त्वचा और जलके बिगड़ जानेसे इसका

उदय होता है । उन अठारह भेदोंमेंसे कपाल, उदुम्बर, मण्डल, सिध्म, काकणक, पुण्डरीक और ऋक्ष - जिह्वा - ये सात ' महाकुष्ठ ' माने गये हैं और कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिक, विपादिक, पाषा, कच्छु, विस्फोटक, दद्रु, किटिटस और अलसक - ये ग्यारह ' क्षुद्रकुष्ठ ' हैं । इनमें किस दोषसे कौन - सा कुष्ठ होता तथा किस प्रकार और कैसा कष्ट देता हैं, यह आयुवेंदके मान्यतम ग्रन्थोंमें विस्तारके साथ बतलाया गया है तथा वहीं इसको दूर करनेके लिये पृथक् - पृथक् उपाय भी बताये गये हैं । परंतु बहुत - से मनुष्योंकी कोढ़ अनेक उपाय करनेपर भी नहीं मिटती - बढ़ती ही जाती है । इससे जान पड़ता है, उनके पूर्वकृत पापोंकी निवृत्ति नहीं हुई है । कर्मविपाकसंग्रहमें कुष्ठकी उत्पत्तिके मुख्य कारण इस प्रकार बतलाये गये हैं - पूर्वजन्ममें गौ - ब्राह्मणादिकी हत्या करने, घर, खेती या जन्तुओंको जलाने तथा दीन - हीन या अपाहिज (लूले - लँगड़े, अन्धे - बहरे और असमर्थ) आदिका सर्वस्व हरण करने आदि कारणोंसे कुष्ठ होता है । पापकी मात्राके

अनुसार ही कुष्ठ - रोगकी भी मात्रा होती है और कोढ़ी मनुष्योके साथ खाने - पीने, उनके वस्त्रादि धारण करने तथा उनके श्वासोच्छ्वासका स्पर्श होने आदिसे यह रोग एकसे दूसरेंमें प्रविष्ट होता है । वास्तवमें इससे बचते रहना ही अच्छा हैं । यदि इसमें रोगीके साथ आहार - विहारादिका सम्बन्ध रखा जाय तो यह एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें फैल जाता है । सूर्यारुणने इसके प्रतीकारका यह उपाय बतलाया है कि रोगीकी जितनी सामर्थ्य हो उतनी तौलके सुवर्णका वृषभ (नन्दिकेश्वर) बनवाकर उसको रेशमी वस्त्रोंसे सुशोभित करे । फिर गन्ध - पुष्पादिसे चर्चित करके

मम पूर्वजन्मार्जितसमस्तपापनिसरनपूर्वकं प्रस्तुतकुष्ठोपशमनकामनया शिवप्रीतये सुवर्णवृषभं वयोवृद्धाय वेदाभ्यासिने सत्पात्रब्राह्मणायाहं दास्ये ।

इस संकल्पके साथ उसका दान करे और रात्रिमें एक समय भोज करे।

विभिन्न कुष्ठोपहरव्रत

(महाभारत)

जलजन्तु (मच्छी, कछुए, मकर, मगरमच्छ और मुर्गा) आदिके प्राण लेने अथवा वस्त्रादिको लूटने आदिसे ' श्वेत - कुष्ठ ' होता है । इसके लिये सांतपनव्रत करे । ...... न्याय - पूर्वक अपराधका निर्णय किये बिना ही निर्दोषपर दोषारोपण करए उसे अनुचित दण्ड देनेसे मुखमण्डलपर ' कृष्ण - कुष्ठ ' होता है । उसके लिये कृच्छ्रतिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करे । क्षुद्र (छोटे) जीवोंका वध करनेसे ' मुखविवर्णकर - कुष्ठ ' (मुखको मधुमक्खियोंके छत्ते - जैसा कुरुप बनानेवाला) होता है । उसके लिये अतिकृच्छ्रचान्द्रायनव्रत करके रजतवृषभ (चाँदीके बैल नन्दिकेश्वर) का दान करना चाहिये । ब्रह्महत्या करनेसे ' पाण्डु - कुष्ठ ' होता है । उसके लिये यथोचित स्नान, दान, जप, तप (उपवास), ईश्वरस्मरण और विष्णुपूजन आदि सत्कर्म करनेके अनन्तर शालग्रामजीकी मूर्तिको

काष्ठासनादिमें सुस्थिर करके उनको जलपूर्ण एक सहस्त्र कलशोंसे स्त्रान करावे । साथ ही पुरुषसूक्तके पाठ तथा प्रत्येक कलशके साथ विष्णुसहस्त्रनामके एक - एक नामका ' ॐ विष्णवे नमः ' इत्यादिरुपसे कारण करता रहे और अभिषेक समाप्त होनेपर पचास ब्राह्मणोंको उत्तम पदार्थोका भोजन करवाकर स्वयं एक समय भोजन करे । पूर्वजन्ममें गौ - ब्राह्मणोंका घात करनेके महापापसे मनुष्यके शरीरमें ' गालितकुष्ठ ' होता है, जिसमेंसे रक्त, जल और चेप सदैव झरते रहते हैं । हाथ, पाँव, अङ्गली, अगूँठे, भौंह, पीठ और कटि आदि सम्पूर्ण अङ्गोमें घात, क्षत या फूटे हुए फोड़े - जैसे चिह्न हो जाते हैं और उनमेंसे दुर्गन्ध निकलती रहती है । यह कोढ़ आमरण रहता है । बल्कि संसर्गदोषवश उसकी मृत्युके पश्चात् बेटे - पोते - तकके शरीरमें भी उसका उदय होता है । इसकी पीड़ासे मुक्त होने या शान्ति - लाभ करनेके लिये यथासामर्थ्य सोना या चाँदीका कालपुरुष बनवावे । उसके चक्राकार गोलवृत्तमें बहुत - सी किरणें भी हों और देखनेमें ग्रह, तारा या सूर्य -

जैसा मालूम हो । तदनन्तर उसको वस्त्रसे ढकी हुई चौकीपर विराजमानकर गन्ध - पुष्पादिसे पूजन करे और वेदज्ञ, विधिज्ञ एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको भोजन कराकर उसका यथाविधि दान करे । इसी तरह अधिक मात्रामें चाँदीकी अनेक बार चोरी करनेमें ' चित्रकुष्ठ ' होता है । उसमें मनुष्यके शरीरमें सर्वत्र ही चित्र - विचित्र सफेद धब्बे हो जाते हैं, जिनसे उसका स्वरुप बिगड़ जाता है । उक्त पापका परिहार करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें जाकर तीन प्राजापत्यव्रत करे और व्रतके दिनोंमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन पल (लगभग बारह तोला) सुवर्णमेंसें प्रतिदिन थोड़ा - थोड़ा असमर्थ मनुष्योंको दान दे।

गजचर्म

(सूर्यारुण कर्म विपाक अध्याय २४०)

जन्मान्तरमें गजाधिपति होकर गजको मरवा डालनेसे गजचर्मका रोग होता है । यह भी कोढ़की ही श्रेणीमें है ।

इसमें चर्मके ऊपर खाज और उसके नीचे अनेक चीटियोके काटने - जैसा दर्द होता है । इसकी निवृत्तिके लिये यथाशक्ति सुवर्णके गणेशजी बनवाकर पूजन करे और उन्हींके सम्मुख बैठकर **' ॐ वक्रतुण्डाय हुं '** इस मन्त्नका प्रतिदिन दस हजार जप और एक हजार आहुति दे तथा एक ब्राह्मणको प्रतिदिन मोदक (लडडू आदि) भोजन करवाकर स्वयं एकभुक्तव्रत करे । इस प्रकार इक्कीस दिन करके उस सुवर्णप्रतिमाका दान करे तो उससे गजचर्म मिट जाता है ।

दद्रुहरव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक अध्याय-२९६)

गौ, ब्राह्मण और देवता आदिके स्थानमें, सर्वसाधारणके बैठने - उठनेके स्थानोंमें, नद, नदी, तालाब या किसी भी जलाशयमें अथवा पुण्य करनेके स्थान, मकान या तीर्थोमे मल - मूत्रादिका त्याग करनेसे ' दद्रु ' (दाद) रोग होता है । इसकी निवृत्तिके लिये सुवर्णमय चतुर्भुज शिवजी, द्विभुज

पार्वतीजी और चाँदीका नन्दिकेश्वर (नाँदिय) तथा घण्टा बनवाकर वेदपाठी ब्राह्मणसे पूजन करावे और-

सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।'

अथवा ' त्र्यम्बकं यजामहे०' या ' ॐ नमः शिवाय ' के जप और इनके दशांश हवन करके दारिद्र्यग्रस्त, धर्मज्ञ एवं परिवारयुक्त ब्राह्मणको उपर्युक्त शिव - पार्वती नाँदिया और घण्टाका अन्य सामग्रियोंसहित दान करे । दान देते समय यह प्रार्थना करे कि

कैलाशवासी भगवानुमया सहितः परः ।

त्रिनेश्च हरो दद्रुरोगमाशु व्यपोहतु ॥'

इसके बाद दान लेनेवालेको विदा करे।

नेत्ररोगोपशमनव्रत

(मदनमहार्णव)

दूसरेकी दृष्टिका नाश करने, कामान्ध होकर परस्त्रियोंको देखने और झूठे ही (बिना वैद्यक पढ़े) वैद्य बन जाने आदिसे अथवा गर्मीसें संतप्त होकर जलस्त्रान करने, दूरकी वस्तु देखने, दिनमें सोकर रातमें जागने, नेत्रोंमें बाफ या पसीना गिरने, धूल पड़ने या धुआँ लगने आदि कारणोंसे नेत्ररोग होते हैं -

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद

दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।

स्वेदाद् रजोधूमनिषेवणाच्चेति... (माधव)

उन्हें दूर करनेके लिये चान्द्रायण और पराकव्रत करके ' ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।' इस मन्त्रका जप करे और घीमें कुछ सुवर्ण डालकरअग्निमें घीकी आहुति दे तथा सुवर्ण सत्पात्रको दे दे; फिर लाल शर्करा, गोधूम तथा घीके बने हुए पदार्थका एक बार भोजन करे । अथवा ' सूर्यारुण

कर्म विपाक अध्याय-१३३ ' के अनुसार कुरुक्षेत्र - जैसे तीर्थमें जाकर घृत - धेनुका दान करे ।

नेत्रगतसर्वरोगोपशमनव्रत

(चाक्षुषी विद्या)

नेत्रज्योति कम हो जाने, दृष्टिमें दोष आ जाने, फूला, चौधिया या आधाशीशी आदिसे नेत्रोंमें खराबी आ जाने आदिकी निवृत्तिके लिये ' नेत्रोपनिषद् ' के एक हजार पाठ करवाकर सूर्यनारायणकी उपासना और रविवारका व्रत करना चाहिये ।

नेत्रोपनिषद्

अथात: श्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामो यया चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यन्ति । चक्षुषो दीप्तिर्भवति । अस्याश्चाक्षुषविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सविता देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे

विनियोगः । ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुस्तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि । त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय । मम जातरुपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपर्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो भगवान् शुचिरुपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरुपः । य इमां चाक्षुष्मर्ती विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुलेऽन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति । ॐ विश्वरुपं हरिणं जातवेदसं हिरण्यमयं ज्योतीरुपं तपन्तं । सहस्त्ररश्मिभिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः । ' ॐ नमो भगवते

आदित्याय अवाग्वादिने स्वाहा ।' इति । (कृ० य० चाक्षुषोप०)

नेत्रादिसर्वरोगहरव्रत

(शौनकव्याख्या)

ताँबेके पात्रको जलसे पूर्ण करके उसमें लाल चन्दन और लाल पुष्प तथा लाल अक्षत डाले और उस जलसे अर्घा अथवा दोनों हाथोंकी अञ्जलि भरकर

' ॐ उद्यन्नद्य मित्रसह सूर्यं तर्पयामि

यह मन्त्रबोलकर सूर्यके सम्मुख छोड़ दे । इसी प्रकार

' ॐ आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि २,

ॐ हृद्रोगं मम सूर्य सूर्यं तर्पयामि ३,

ॐ हरिमाणं च नाशय सूर्यं तर्पयामि ४,

ॐ शुकेषु हरिमाणं सूर्यं तर्पयामि ५,

रोपणाकासु दध्मसि सूर्यं तर्पयामि ६,

अर्हो हारिद्रवेषुवे सूर्यं तर्पयामि ७,

ॐ हरिमाणं निदध्मास सूर्यं तर्पयामि ८,

ॐ उदगादयमादित्यः सूर्यं तर्पयामि ९,

ॐ विश्वेन सहसा सह सूर्यं तर्पयामि १०,

ॐ द्विषन्तं मह्यं रंधयन् सूर्यं तर्पयामि ११,

ओमोमहं द्विषतेरधं सूर्यं तर्पयामि १२ ।'

इनके उच्चारणसे सूर्यके सम्मुख जल छोड़े । इसके पीछे उपर्युक्त

' उद्यन्नद्य मित्रसह आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि ।'

कहकर सूर्यके सम्मुख जल छोड़े । इस प्रकार दो - दोके उच्चारणसे दूसरी बार और फिर उक्त ' उद्यन्नद्य०' आदि चार -चार पदके एक - एक करके ' सूर्य तर्पयामि ' कहते

हुए तीसरी बार जल छोड़े । इसमें पहलेमें बारह, दूसरेमें छः और तीसरेमें तीन जलाञ्जलि दी जाती है । ये सम्पूर्ण तीन ऋचा हैं । जिनके बारह पदोंसे बारह, दो - दोके युगलसे छः और चार - चारके पूरे मन्त्रसे तीन जलाञ्जलियाँ दी जाती हैं । इस तर्पणसे नेत्रसम्बन्धी सर्वरोगोंका शमन तो होता ही है, श्रद्धाके साथ पाद - ऋचाओंसे बारह बार, अर्धऋचाओंसे दस बार, सर्वऋचाओंसे तीन बार, सार्धऋचासे दो बार और तीनों ऋचाओंसे एक बारकी कुल चौबीस जलाञ्जलि देकर तर्पण करनेसे नेत्ररोग, ज्वरोग, विस्फोटक और सर्पविषतक दूर हो जाते हैं-

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।

रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ (शौनक)

परंतु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामान्य या कठिन - जैसा रोग अथवा विष हो उसीके अनुसार २ अटठाईस या एक सौ आठ बार तर्पण करे-

अस्य सकलस्यापि तर्पणप्रयोगस्य व्याध्यनुसारेणाष्टाविंशातिरष्टोत्तरशतमित्याद्यावृत्तिः कल्पनीया ।' (अनु० प्रकाश)

भगन्दरहरदानव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक, अध्याय-८५)

माघ या वैशाखके शुक्लपक्षमें सप्तमी रविवारको प्रातःस्त्रानादि करनेके पश्चात् आकके पत्तेके आसनपर बैठकर सूर्याभिमुख हो यथाशक्ति सोना, चाँदी या ताँबेके पात्रमें गायका घी भरे और उसमें यथासम्भव माणिक्य आदि रत्नोके कण डालकर गन्धादिसे पूजन करे । पीछे सूर्यादि ग्रहोंके मन्त्नोसे आठ, अट्ठाईस या एक सौ आठ

आहुति देकर उक्त घृतपूर्ण पात्रका दान करे । दान देते समय-

'आदित्यादिग्रहाः सर्वे नवरत्नप्रदानतः ।

विनाशयन्तु मे दोषान् क्षिप्रमेव भगन्दरम् ॥'

इस मन्त्रको पढ़े।

शीर्षव्रणहरव्रत

(सूर्यारुणकर्म विपाक)

जन्मान्तरमें नारिकेल (नारियल या श्रीफलों) के अपहरण करनेसे मुखमण्डलको शोभाहीन बनानेवाला शीर्षव्रण होता है । उसके निवारणके निमित्त शिवजीके मन्दिरमें जाकर उनका यथाविधि पूजन करे और नारियलका फल चढ़ावे । इसी प्रकार पार्वतीजीकी भी यथावत् पूजा करे । फिर हाथ जोड़कर

यन्मया नारिकेलानि हत्वा पापमुपार्जितम् ।

अर्चितो भगवान् रुद्रो भवान्या भयभञ्जनः ॥

यथाशक्ति च दानाद्यैर्भवन्तोऽपि च पूजिताः ।

कर्मणानेन मे नाशमुपैतु शिरसो व्रणः ॥

इस मन्त्रसे प्रार्थना करके फलाहार करे ।

शेफसव्रणहरव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक)

म्लेच्छ - स्त्रियोंमें अभिगमन करनेसे इन्द्रियके अग्रभागपर शूकोत्थ (इन्द्रियको दीर्घ करनेवाला दुष्टव्रण) होता है । इसके होनेसे शुक्र, मूत्र और पुरीषादिके त्यागमें बड़ी असुविधा होती है । भरतने लिखा है कि रेतस्स्रावके समय शेफससञ्चित जलस्राव हो जाता है । इस अनिष्टकर व्रणको दूर करनेके लिये शुक्लपक्षकी द्वादशीको सूर्योदयसे पहले किसी स्वच्छ जलवाले जलाशयपर जाकर प्रातःस्नानादि करनेके अनन्तर हाथमें जल, फल और गन्धाक्षत लेकर

मम तिलजीतिप्रसिद्धशूकोत्थशेफसव्रणनिरसनपूर्वकं मेढ्रगतसर्वरोगप्रशान्तये च श्रीवरुणदेवमहं पूजयिष्ये ।'

इस प्रकार संकल्प करके वरुणका यथाविधि पूजन करे और यजुर्वेदके विद्वान् ब्राह्मणको गौ देकर फलाहारपूर्वक व्रत करे।

सुतहीनत्वदोषहरव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक अध्याय- ९६)

पराये पुत्रोंका प्राणान्त करनेके पापसे पुत्रहीनता प्राप्त होती है । इसकी निवृत्तिके लिये सोनेके पात्रमें सगभी स्त्रीका चित्र बनवाकर उसका पूजन करे और

आर्यामेनां च सौवर्णी वस्त्राढ्यां विधिदैवताम् ।

ददेऽहं विप्रमुख्याय पूजिताय विधानतः ॥

गर्भपातनजाद्दोषात्पूर्वपापविशुद्धये ।'

इसका उच्चारण करके सत्पात्रको दे । इसके अतिरिक्त गायत्री अथवा त्र्यम्बक मन्त्रके पचीस सौ जप और व्रत करनेके अनन्तर हवन और ब्राह्मण - भोजन करावे

वन्ध्यात्वहरगौरीव्रत

(सूर्यारुण कर्म विपाक, १७४, ३४७, ३८८)

यदि ब्राह्मणी होकर वैश्यके साथ या वैश्या होकर शूद्रके साथ सहवास करे तो वह दूसरे जन्ममें वन्ध्या होती है । इस पापकी शान्तिके लिये मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे प्रारम्भ करके सोलह दिनतक गौरीपूजनके साथ एकभुक्त - व्रत करे तथा

' वन्ध्यत्वहरगौर्यै नमः '

इस मन्त्रका प्रतिदिन सोलह हजार जप करे । तत्पश्चात् समाप्तिके दिन तिल - तैलपूर्ण सोलह दीपक जलाकर गौरीके सम्मुख रख दे और रातमें जागरण करे । फिर दूसरे

दिन सोलह दम्पती (ब्राह्मण - ब्राह्मणी) को भोजन करवाकर सोलह सौभाग्याष्टक दान करे।

सर्वव्याधिहरव्रत

(शातातपादि)

श्रेष्ठ पात्रमें उत्तम श्रेणीके चावल भरकर उसे वस्त्रसे ढक दे। फिर उसमें हर प्रकारकी व्याधियोंके उपस्थित होनेकी भावना करके उनका गन्ध - पुष्पादिसे पूजन करे। साथ ही विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करके उस तण्डुलसे भरे हुए पात्रको श्रद्धाके साथ उसे दान दे, उस समय

ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम ।

गृह्णीष्व प्रतिरुपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम ॥

इस श्लोकका उच्चारण करे । तदनन्तर प्रतिग्राहीको यथाशक्ति वस्त्राभूषण, भोजन और दक्षिणा आदि देकर विदा करे। इससे सम्पूर्ण रोग शान्त होते हैं ।

प्रसवपीडाहरव्रत

(संस्कारप्रकाश)

पलाशपत्रके दोनेमें एक पल (लगभग चार तोला) तिलका तैल भरकर दूर्वाके इक्कीस पत्रोंद्वारा प्रदक्षिणा - क्रमसे उसका आलोडन करे (दूर्वाङ्कुरोंको तैलमें घुमावे)। उस समय प्रत्येक बारके आलोडनमें

हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शबरी नाम यक्षिणी ।

तस्या नूपुरशब्देन विशल्या स्यात्तु गर्भिणी ॥

इस मन्त्रका उच्चारण करता रहे । इक्कीस बार जप हो जानेपर उसमेंसे थोड़ा - सा तैल गार्भिणीको पिलावे और स्वयं उपवास करके उक्त मन्त्रका जप करे । इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है और गर्भावस्थाकी पीड़ा मिट जाती है।

महामारीशमनविधानव्रत

(ब्रह्मवैवर्त) - राजाओंके किये हुए महापापोंके प्रभावसे प्रजामें महामारी - जैसे दारुण और असहनीय उपद्रव हुआ करते है, उनके उपशमनार्थ स्वयं राजा या सम्पूर्ण प्रजा अथवा कोई भी धर्मप्राण महापुरुष अकेला या सामूहिक रुपसे अनुष्ठान करे । ऐसा अनुष्ठान नगर, ग्राम या बस्तीके मध्यभागमें होना चाहिये । अथवा सदगृहस्थ पुरुष अपने - अपने घरोंमें ही अनुष्ठान कर सकते हैं । इसके लिये नृसिंह पुराणकें अनुसार 'नृसिंहमन्त्र' के जप, अनुष्ठानप्रकाशादिके अनुसार महामृत्युञ्जयजप; सौ हजार या दस हजार दुर्गापाठ; रुद्र, अतिरुद्र और महारुद्रादिके विधान; भैरव - भैरवी आदिकी उपासना; चौराहोंमें तिल, घी, चीनी और अमृता आदि विषघ्न ओषधियोंका एक लक्ष हवन, नौ दिनोंतक श्रीराम - नाम - कीर्तन, यताशक्ति दान, धर्म और ब्राह्मण - भोजन आदि उपाय बतलाये गये हैं । इनके अनुष्ठानसे महामारी या महोग्रज्वर आदिके उपद्रव शान्त होते हैं । इस विषयमें ' सुश्रुत ' का सिद्धान्त सर्वोत्तम प्रतीत होता है । उसने कहा है कि '

देशत्यागाज्जपाद्धोमान्महामारी प्रशाम्यति ' इसी प्रकार प्लेगके विषयमें देवीभागवतके प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ आचार्यने लिखा है कि -

मूषकं पतितोत्थं च मृतं दृष्टा च यद् गृहे ।

तद् गृहं तत्क्षणं त्यक्त्वा सकुतुम्बो वनं व्रजेत् ॥

इन सबमें नियमानुसार रहना और ईश्वरका स्मरण करना सर्वोत्कृष्ट है ।

जहाँ महामारी फैली हो उस स्थान या गाँवको छोड़कर हट जाने और जप तथा हवन करनेसे महामारी शान्त हो जाती है ।

जिस घरमें चूहेको गिरकर - उछलकर प्राण - त्याग करते देखा जाय, उसे छोड़कर कुटुम्बसहित वनमें (शून्य स्थानमें) चले जाना चाहिये।

सर्वरोगनाशक धर्मराजव्रत

(मन्त्रमहोदधि) - कोई भी रोग किसी भी औषधोपचारसे शान्त न हुआ हो तो प्रातःस्नानादिके पश्चात् पवित्रावस्थामें रहकर

ॐ क्रौं ह्लीं आं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः'

इस मन्त्रका पूर्णतया अभ्यास करके मन - ही - मन अखण्ड जप करता रहे; इससे सम्पूर्ण पाप, ताप और रोग दूर होते हैं।

सर्वरोगहर चित्रगुप्तव्रत

(मन्त्रमहोदधि)

ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे मृत्युं जन्म संपत्प्रलयं कथय कथय स्वाहा ।'

इस मन्त्नका दस हजारसे अधिक जप करनेपर हर प्रकारके रोग - दोषादि शान्त होते हैं।

कलिमलहर

श्रीकृष्णव्रत(पापसम्भूतसर्वरोगार्तिहरव्रत)

(सूर्यारुण ३०९)

जिस वर्षमें भाद्रपदकी कृष्णाष्टमी अर्धरात्रव्यापिनी हो और उसके साथ बुधवार, रोहिणी - नक्षत्र तथा शुभ योग हो, उस वर्षके उस पावन पर्वके दिन प्रातःकाल तीर्थादिके जलसे या कुएँके तुरंत निकाले हुए पानीसे स्नान करके संध्या - वन्दनादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् उपवास करके

' ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः ।'

इस मन्त्रका दिनभर मानस जप करता रहे और सायंकालमें श्रीकृष्णका उत्साहपूर्वक उत्सव करके गायन, वादन और नर्तन करके जागरण करे । फिर दूसरे दिन व्रतका विसर्जन करके पारणा करे तो इस व्रतके प्रभावसे भवसागरसम्भूत सम्पूर्ण बाधाएँ और पापसम्भूत सम्पूर्ण

रोग - दोष शान्त होकर अपूर्व सुख - सौभाग्यादिकी प्राप्ति होती है ।

पापसम्भूतसर्वरोगार्तिहरव्रत समाप्त

पुत्र दायक गो - पूजन व्रत

किसी सौभाग्यवतीको पुत्र न होता हो तो वह कार्तिक, मार्गशीर्ष या वैशाखके शुक्ल पक्षमें पहले गुरुवारको गो - पूजन प्रारम्भ करे । प्रातःकाल नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर अपनी या परायी किसी भी गौको मकानके प्राङ्गणमें पूर्वाभिमुख खड़ी करके स्वयं उत्तराभिमुख होकर शुद्ध जलसे उसका पादप्रक्षालन करे । फिर उसके ललाटको धोकर मध्यमें रोलीका टीका लगावे और अक्षत चढ़ावे । फिर कुछ भोजन, लडडू, पेड़ा, बतासा या गुड़ खिलाकर मुँह धो देवे । फिर करबद्ध नतमस्तक होकर प्रार्थना करे कि

' हे मातः ! मुझे पुत्र प्रदान कर । ' इस प्रकार वर्षभर करना चाहिये।

सन्तानहीनता नाशक अभिलाषाष्टक पारायण व्रत

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड पूर्वार्द्ध, अध्याय १०)

ऋषिवर विश्वानरकी धर्मपत्नी शुचिष्मतीने अपने पतिसे प्रार्थना की कि मेरे ' शिव - समान पुत्र हो ।' यह सुनकर विश्वानर क्षणभर तो चुप रहे, फिर बोले ' एवमस्तु ' और उन्होंने स्वयं ही १२ महीनेतक फलाहार, जलाहार और वाय्वाहारके आधारपर घोर तप किया । फिर काशी जाकर विकरादेवी तथा सिद्धि - विनायकके समीप चन्द्रकूपमें स्नान करके वहीं वीरेश्वरके समीप अभिलाषाष्टकके आठ मन्त्रोंसे बड़ी श्रद्धापूर्वक स्तुति की । इससे भगवान शङ्कर प्रसन्न हो गये और कुछ ही दिन बाद विश्वानरकी पत्नी शुचिष्मतीको गर्भ रह गया । समय आनेपर उसने शिवसदृश पुत्र गृहपति (अग्नि) को जन्म दिया । अतः

संतानकी कामनावाले पति या पत्नीको चाहिये, प्रातःशौच - स्नानादिसे निवृत्त हो शिवजीका पूज करे और इस स्तोत्रका आठ या अट्ठाईस बार पाठ करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पाठ करते रहनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है।

अभिलाषाष्टकस्तोत्रम्

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं

सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्।

एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे

तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥१॥

एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शम्भो

नाना रुपेष्वेकरुपोऽस्यरुपः।

यद्वत्प्रत्यखर्क एकोऽप्यनेकस्

तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥२॥

रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रुप्यं

नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।

यद्वत्तद्वद्विश्वगेष प्रपञ्चो

यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥३॥

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ

तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।

पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्

यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥४॥

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रे-

रघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात् ।

व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः

कस्त्वां सम्यग् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥५॥

नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद

नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य ।

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा

भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥६॥

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या

नो वा रुपं नैव शीलं न देशः।

इत्थं भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः

सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥७॥

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे

त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः ।

त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्

किं यत्वं नास्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥८॥

(स्कं० काशी० १० । १२६ - १३३)

पापघट - दान

किसी पातक, उपपातक या महापातकके प्रभावसे पुत्र नहीं हुआ हो तो दम्पत्तिको चाहिये कि वे किसी तीर्थपर जाकर किसी शुभ दिनमें पापघट - दान करें । यथासामर्थ्य सोने, चाँदी या ताँबेका ६४ पलका कलश रखकर उसपर अग्न्युत्तारणकर पञ्चगव्यादिसे शुद्ध करें । साथ ही किसी ऐसे दूरस्थ ब्राह्मणको बुलावें जो दान लेकर चले जानेपर फिर कभी देखनेमें न आवे । इसके पूर्व दिन दोनों स्त्री - पुरुष एक बार भोजनकर ब्रह्मचर्य पालन करें । फिर दूसरे दिन शौच - स्त्रानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठें । सामने किसी चौकी या वेदीपर लाल वस्त्र बिछाकर उसपर अक्षतसे अष्टदल कमल बनावें । फिर उसपर यथाविधि कलश स्थापनकर उसमें घी या शक्कर भरकर आम्रपल्लव अथवा अशोकादि पत्रोंसे सुशोभित कर ऊपर पूर्णपात्र स्थापित करें । उसके मध्यभागमेंख सुवर्णनिर्मित्त विष्णुमूर्ति और उसके समीप ही फणाकृति नागमूर्ति स्थापित करे । प्राङ्गणके मध्यभागमें स्थण्डिलके ऊपर पञ्चभू - संस्कारपूर्वक अग्नि - स्थापन करें ।

गणपतिपूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन एवं ग्रहस्थापनकर सबोंका पूजन करें । फिर भगवान् विष्णुकी षोडशोपचारपूजाकर नागकी पञ्चोपचारसे पूजा करे । फिर कुशकण्डिका करके विष्णुमन्त्र से घीकी १००८ या १०८ आहुतियाँ दें और पूर्वोक्त ब्राह्मणका पूजनकर उसे भोजन करावें । इसी समय

मनसा दुर्विनीतेन यन्मया पातकं कृतम् ।

तत्तिष्ठतु घटे चास्मिन् गुरुदेवप्रसादतः ॥१॥

व्रजता तिष्ठता वापि कर्मणा यदुपर्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥२॥

परस्वहरणेनापि पातकं यदुपार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥३॥

सुवर्णस्तेयजं पापं मनोवाक्कायकर्मजम् । तत्तिष्ठतु० ॥४॥

रसविक्रयतः पापं ब्रह्मजन्मनि संचितम् । तत्तिष्ठतु० ॥५॥

क्षात्रधर्मविहीनेन क्षात्रजन्मनि यत्कृत्तम् । तत्तिष्ठतु० ॥६॥

वैश्यजन्मन्यपि मया तथा यत्पातकं कृतम् । तत्तिष्ठतु० ॥७॥

शूद्रजन्मनि यत्पापं सततं समुपार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥८॥

गुरुदारभिगमनात् पातकं यन्मयार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥९॥

अपेयपानसम्भूतं पातकं यन्मयार्जितम् । तत्तिष्ठतु० ॥१०॥

वापीकूपतडागानां भेदनेन कृतं च यत् । तत्तिष्ठतु० ॥११॥

अभक्ष्यभक्षणेनैव संचितं यत्तु पातकम् । तत्तिष्ठतु० ॥१२॥

ज्ञाताज्ञातैरनेकैश्च घटोऽयं सम्भृतो मया ।

पूर्वजन्मान्तरोत्पन्नैरेतज्जन्मकृतैरपि ॥१३॥

आदि मन्त्रों को पढ़ते हुए प्रति मन्त्र अक्षत या दूब कलशपर चढ़ाता जाय । मन्त्न समाप्त हो जानेपर हाथमें जल, फल, चन्दन, अक्षत पुष्पादि लेकर देश - कालादिका कीर्तनकर

अमुकोऽहं मत्कर्तृकानेकजन्मर्जितज्ञाताज्ञातवाडमनः कायकृतमहापातकोपपातकादिपूरितमिमं घटं गन्धपुष्पाद्यार्चिंत तुभ्यं सम्प्रददे ।

इस प्रकार संकल्पकर ब्राह्मणके हाथमें संकल्प छोड़ दे । साथ ही थोड़ा सुवर्ण देकर उस कलशको दोनों हाथोंसे उठाकर ब्राह्मणको दे और हाथ जोड़कर प्रार्थना करे -

महीसुर ! द्विजश्रेष्ठ ! जगतस्तापहारक ।

त्राहि मां दुःखसंतप्तं त्रिभिस्तापैः सदार्दितम् ॥

संसारकूपतस्त्वं मां समुद्धर नमोऽस्तु ते ।

त्वदन्यो नास्ति मां देव समुद्धर्तुं क्षमः क्षितौ ॥

इस प्रकार प्रार्थनाकर विसर्जन करे । फिर आचार्यको दक्षिणा देकर भोजन कराये । तदनन्तर दम्पति स्वयं भोजन करें ।

पुत्रद कृष्णव्रत

प्रौढावस्थामें भी पुत्र न हो तो यज्ञोपवीत धारण करके श्रीकृष्ण या गणेशके मन्दिरमें अथवा गोशाला या पीपल, गूलर या कदम्ब - वृक्षके नीचे बैठकर कमल, कदम्ब या तुलसीकी मालापर -

' देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।

देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥'

इस मन्त्रका प्रतिदिन पाँच हजार, ढाई हजार या एक सहस्त्र जप करे । इस प्रकार एक लाख पूरा हो जानेपर दशांश हवन, तर्पण, मार्जनकर ब्राह्मणोंको खीर, मालपूआ, पूड़ीका भोजन करावे । ऐसा करनेसे श्रीकृष्णकी कृपासे पुत्र प्राप्त होता है ।

यद्यपि उपर्युक्त व्रत पाप - नाशके निमित्तसे किये जाते हैं, तथापि यदि इनका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाय तो इनके प्रभावसे जीवनमें अपूर्व परिवर्तन दिखायी देता है । वर्षोंसे दुःख भोगनेवाले मनुष्यको भी इन व्रतोंके आचरणसे ऐसे साधन मिल जाते हैं, जिनके प्रभावसे उसके सम्पूर्ण दुःख - दारिद्र्य स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित सुखोंकी प्राप्ति होने लगती है । व्रत करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह व्रतारम्भके पहले दिन मुण्डन कराये;

फिर भस्म, गोमय, मृत्तिका, जल और पञ्चगव्यसे स्नान करके अन्तमें शुद्ध स्नान करे। तत्पश्चात् सायंकालमें जब तारे दिखायी देने लगें, तब व्रतकी दीक्षा ले और अपने किये हुए पापोंके लिये सच्चे हृदयसे पश्चाताप करते हुए उनको जनताके सामने स्पष्टरुपसे प्रकट करे। फिर दूसरे दिन प्रातःस्नान आदिके बाद देवपूजा, पितृपूजा, घृतहोम और गायत्री - जप करके मौनावलम्बनपूर्वक मन, वाणी और क्रियाके द्वारा व्रतमें संलग्न हो जाय तथा उसे सावधानीके साथ पूर्ण करे।